INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD)
© 2026 IJNRD | Volume 11, Issue 2, February 2026 | ISSN: 2456-4184 | IJNRD.ORG

भाषा के बहाने : समकालीन भाषायी विमर्श की आलोचनात्मक समीक्षा

शोधार्थी: प्रतिभा झा
विभाग: हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

यह शोध आलेख सुरेश पंत की कृति 'भाषा के बहाने' के आधार पर समकालीन हिंदी भाषायी विमर्श की आलोचनात्मक समीक्षा प्रस्तुत करता है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भाषा को केवल संप्रेषण के साधन के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक सत्ता-संबंधों, सांस्कृतिक संरचनाओं और वैचारिक प्रक्रियाओं के सक्रिय क्षेत्र के रूप में समझना है। आलेख में भाषा और सत्ता, मीडिया-भाषा, बाज़ारवाद, वैश्वीकरण तथा भाषायी लोकतंत्र के प्रश्नों के संदर्भ में पुस्तक की वैचारिक दृष्टि और आलोचनात्मक पद्धति का विश्लेषण किया गया है।

सुरेश पंत भाषायी शुद्धतावाद और मानकीकरण की सीमाओं की ओर संकेत करते हुए लोकभाषाओं, बहुभाषिकता और समावेशी भाषिक चेतना की आवश्यकता पर बल देते हैं। वैश्वीकरण और मीडिया के प्रभाव से बदलती भाषा-प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए यह आलेख दिखाता है कि भाषा का परिवर्तन व्यापक सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है।

निष्कर्षतः यह अध्ययन स्थापित करता है कि *'भाषा के बहाने'* समकालीन हिंदी आलोचना में भाषा को लोकतांत्रिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श के केंद्र में स्थापित करने वाली एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

बीज शब्द: भाषा-विमर्श; भाषायी राजनीति; हिंदी आलोचना; मीडिया भाषा; वैश्वीकरण

भूमिका

भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक सत्ता-संबंधों, सांस्कृतिक वर्चस्व और वैचारिक संघर्षों का क्षेत्र भी है। समकालीन हिंदी आलोचना में भाषा को लेकर होने वाला विमर्श अक्सर शुद्धतावाद, मानकीकरण और व्याकरणिक अनुशासन तक सीमित रहा है। सुरेश पंत की पुस्तक 'भाषा के बहाने' इस संकुचित दृष्टि का अतिक्रमण करती है और भाषा को एक जीवंत सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में देखने का आग्रह करती है।

पंत का भाषा-चिंतन इस धारणा पर आधारित है कि भाषा सत्ता के साथ अंतःक्रिया में निरंतर रूपांतरित होती है। मीडिया, बाज़ार और तकनीक के प्रभाव में भाषा के बदलते स्वरूप को समझना आज के समय में विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाता है। इस दृष्टि से ''भाषा के बहाने' समकालीन भाषायी संकटों और संभावनाओं पर एक गंभीर हस्तक्षेप के रूप में सामने आती है।

पुस्तक की संरचना और विषय-वस्तु

'भाषा के बहाने' मूलतः भाषा से जुड़े निबंधों का संकलन है, जिसमें लेखक ने विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में भाषा की भूमिका पर विचार किया है। पुस्तक के निबंध भाषा और लोकतंत्र, भाषा और बाज़ार, मीडिया की भाषा, अंग्रेज़ी के वर्चस्व, हिंदी की सामाजिक स्थिति तथा भाषायी विविधता जैसे विषयों को स्पर्श करते हैं।

पुस्तक की संरचना खंडात्मक होते हुए भी वैचारिक रूप से संगठित है। प्रत्येक निबंध भाषा के किसी विशिष्ट पक्ष पर केंद्रित होते हुए व्यापक सामाजिक संदर्भों से जुड़ता है। यह संरचना पाठक को भाषा के प्रश्नों को बहुआयामी दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित करती है।

भाषा और सत्ता: भाषायी राजनीति का प्रश्न

सुरेश पंत भाषा और सत्ता के संबंध को विशेष महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार भाषा केवल विचारों की अभिव्यक्ति का साधन नहीं, बल्कि सत्ता-संरचनाओं द्वारा नियंत्रित और संचालित होने वाली सामाजिक संस्था है। मानक भाषा का निर्माण अक्सर प्रभुत्वशाली वर्गों के हितों से जुड़ा होता है, जिसके परिणामस्वरूप हाशियाकृत भाषिक रूपों को 'अशुद्ध' या 'अपरिष्कृत' घोषित कर दिया जाता है। पुस्तक में लेखक यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि भाषायी शुद्धतावाद वस्तुतः सामाजिक वर्चस्व का उपकरण बन जाता है। इस संदर्भ में पंत का विश्लेषण भाषा-विमर्श को लोकतांत्रिक बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप है।

भाषा, बाज़ार और मीडियासमकालीन समय में मीडिया और बाज़ार भाषा के स्वरूप को गहराई से प्रभावित कर रहे हैं। सुरेश पंत मीडिया-भाषा के सरलीकरण, सनसनीखेज़ीकरण और बाज़ारोन्मुखी प्रवृत्तियों की आलोचना करते हैं। उनके

अनुसार मीडिया में प्रयुक्त भाषा का उद्देश्य सूचना से अधिक उपभोग और मनोरंजन को बढ़ावा देना है, जिससे भाषा की वैचारिक गहराई क्षीण होती जा रही है। बाज़ारवादी दबावों के कारण भाषा में विज्ञापनात्मक शैली का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। यह प्रवृत्ति भाषा को संवेदनशील संवाद का माध्यम बनाने के बजाय उपभोक्ता को आकर्षित करने का उपकरण बना देती है।

वैश्वीकरण और भाषायी संकट

वैश्वीकरण के दौर में अंग्रेज़ी का बढ़ता वर्चस्व स्थानीय भाषाओं के लिए चुनौती बनकर उभरा है। सुरेश पंत इस संदर्भ में हिंदी की स्थिति पर विचार करते हुए यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या वैश्विक संचार की आवश्यकता के नाम पर स्थानीय भाषाओं को हाशिये पर धकेला जा रहा है।

पंत का तर्क है कि भाषायी बहुलता को संरक्षित किए बिना लोकतांत्रिक संस्कृति का विकास संभव नहीं है। वे अंग्रेज़ी-विरोध के स्थान पर बहुभाषिकता के समर्थन की बात करते हैं और हिंदी को समावेशी भाषिक परंपरा के भीतर विकसित करने का आग्रह करते हैं।

भाषा और लोकतंत्र: लोकभाषाओं का प्रश्न

सुरेश पंत भाषा को लोकतांत्रिक संवाद का माध्यम मानते हैं। उनके अनुसार लोकतंत्र केवल राजनीतिक संरचना नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संवाद की प्रक्रिया भी है। लोकभाषाएँ इस संवाद का आधार होती हैं, किंतु मानक भाषा के वर्चस्व में ये प्रायः हाशिये पर चली जाती हैं। 'भाषा के बहाने' में लेखक लोकभाषाओं के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टि की आलोचना करते हुए यह रेखांकित करते हैं कि भाषायी विविधता लोकतांत्रिक समाज की अनिवार्य शर्त है।

लोकभाषाओं की अवहेलना सामाजिक असमानताओं को और गहरा करती है। शिक्षा, प्रशासन और मीडिया में मानक भाषा का एकाधिकार उन समुदायों को हाशिये पर धकेल देता है जिनकी मातृभाषा भिन्न होती है। पंत का यह विश्लेषण भाषा-विमर्श को सामाजिक न्याय के प्रश्न से जोड़ता है।

मानकीकरण बनाम भाषायी विविधता

भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया अक्सर ऐतिहासिक और राजनीतिक कारकों से संचालित होती है। सुरेश पंत मानते हैं कि मानकीकरण आवश्यक होते हुए भी जब वह भाषायी विविधता को दबाने लगे, तो वह लोकतांत्रिक मूल्यों के विरुद्ध चला जाता है। 'भाषा के बहाने' में मानक हिंदी के प्रभुत्व के संदर्भ में क्षेत्रीय बोलियों और उपभाषाओं की उपेक्षा पर प्रश्न उठाए गए हैं।

यह पुस्तक इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि हिंदी की समृद्धि उसकी बहुलता में निहित है। अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली जैसी बोलियाँ हिंदी की जीवंतता को बनाए रखती हैं। मानकीकरण के नाम पर इनकी अवहेलना हिंदी के सांस्कृतिक आधार को कमजोर करती है।

समकालीन हिंदी आलोचना में 'भाषा के बहाने' का योगदान

समकालीन हिंदी आलोचना में भाषा पर गंभीर और समाज-सापेक्ष चिंतन अपेक्षाकृत सीमित रहा है। इस संदर्भ में 'भाषा के बहाने' एक उल्लेखनीय कृति है, जो भाषा को सत्ता, बाज़ार और मीडिया के संदर्भ में समझने की वैचारिक ज़मीन तैयार करती है। पंत की यह पुस्तक हिंदी आलोचना को भाषिक राजनीति के प्रश्नों से जोड़ती है और आलोचना को केवल साहित्यिक पाठ तक सीमित न रखकर व्यापक सांस्कृतिक विमर्श की ओर उन्मुख करती है। यह योगदान हिंदी आलोचना की दिशा को विस्तृत करने में सहायक सिद्ध होता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सुरेश पंत की 'भाषा के बहाने' समकालीन हिंदी भाषा-विमर्श में एक सशक्त और प्रासंगिक हस्तक्षेप है। यह पुस्तक भाषा को सामाजिक सत्ता-संबंधों, बाज़ारवादी दबावों और लोकतांत्रिक मूल्यों के संदर्भ में देखने की दृष्टि प्रदान करती है। भाषा के बहाने लेखक वस्तुतः समाज और संस्कृति के व्यापक प्रश्नों को संबोधित करते हैं। इस दृष्टि से यह कृति हिंदी आलोचना के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक योगदान के रूप में स्थापित होती है।

संदर्भ-सूची

पंत, सुरेश, भाषा के बहाने, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015।
शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2013।
द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008।
सिंह, नामवर, दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002।
मिश्र, शिवकुमार, हिंदी आलोचना के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012।